अवैध घुसपैठियों पर सरकार का चलेगा डंडा

वैश्विक स्तरपर भारत में अवैध घुसपैठ, सीमाई सुरक्षा और जनसंख्या संरचना में हो रहे बदलावों को लेकर बहस कोई नई नहीं है,लेकिन वर्ष 2026 में यह मुद्दा एक बार फिर राष्ट्रीय राजनीति और सुरक्षा विमर्श के केंद्र में आ गया है। केंद्र सरकार ने मिशन डेमोग्राफी के तहत जनसांख्यिकीय परिवर्तन पर एक उच्चस्तरीय समिति के गठन की घोषणा करके यह संकेत दिया है कि अब अवैध प्रवासन को केवल कानून-व्यवस्था या मानवीय समस्या के रूप में नहीं,बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा, लोकतांत्रिक संतुलन, सीमा प्रबंधन, संसाधनों पर दबाव और सामाजिक स्थिरता से जुड़ी व्यापक चुनौती के रूप में देखा जा रहा है। केंद्रीय गृह मंत्री ने जिस अननेचुरल डेमोग्राफिक चेंज की बात कही, उसका सीधा संबंध उन क्षेत्रों से जोड़ा जा रहा है जहाँ सरकार के अनुसार अवैध घुसपैठ,सीमा पार गतिविधियों और संगठित बसावट के कारण जनसंख्या संरचना में असामान्य बदलाव दिखाई दे रहे हैं। इसी पृष्ठभूमि में सरकार ने सुप्रीम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश जस्टिस प्रकाश प्रभाकर नावलेकर की अध्यक्षता में एक हाई-लेवल कमेटी बनाई है,जिसका उद्देश्य अवैध आप्रवास,सीमाई घुसपैठ,मतदाता पहचान, फर्जी दस्तावेज, सीमा प्रबंधन और जनसंख्या असंतुलन जैसे मुद्दों का व्यापक अध्ययन करना है। इस पूरी बहस के केंद्र में एक पुराना और विवादित कानून भी फिर चर्चा में आ गया है, आईएमडीटी एक्ट,1983, जिसे आलोचक असम में जनसांख्यिकीय परिवर्तन का बड़ा कारण मानते हैं, जबकि समर्थक इसे अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए आवश्यक बताते रहे।मैं एडवोकेट किशन सनमुखदास भावनानीं गोंदिया महाराष्ट्र यह मानता हूं कि आज मिशन डेमोग्राफी को लेकर जो राजनीतिक और वैचारिक संघर्ष दिखाई दे रहा है,उसकी जड़ें असम आंदोलन,अवैध बांग्लादेशी घुसपैठ और भारतीय लोकतंत्र में वोट बैंक राजनीति के आरोपों तक जाती हैं। यही कारण है कि सरकार अब डिटेक्ट, डिलीट और डिपोर्ट की नीति को राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने की दिशा में सक्रिय दिखाई दे रही है।

साथियों बात अगर हम भारत में अवैध प्रवासन के प्रश्न को समझने की करें तो, यह विशेष रूप से पूर्वोत्तर राज्यों,खासकर असम से जुड़ा रहा है। असम लंबे समय तक बांग्लादेश से होने वाली कथित अवैध घुसपैठ का केंद्र माना जाता रहा।1970 और 1980 के दशक में यह मुद्दा इतना बड़ा बन गया कि वहाँ व्यापक जन आंदोलन शुरू हुआ,जिसे असम आंदोलन कहा गया।आंदोलनकारी संगठनों का आरोप था कि बड़ी संख्या में अवैध प्रवासी राज्य की जनसंख्या संरचना बदल रहे हैं,स्थानीय संस्कृति और भाषाई पहचान पर दबाव बढ़ रहा है तथा मतदाता सूचियों में बाहरी लोगों के नाम शामिल होने से लोकतांत्रिक संतुलन प्रभावित हो रहा है। इसी पृष्ठभूमि में 1983 में इललीगल माइग्रेंट्स (डिटरमिनेशन बाय ट्रिब्यूनल्स) एक्ट यानी आईएमडीटी एक्ट लागू किया गया। यह कानून केवल असम में लागू था और इसका उद्देश्य अवैध प्रवासियों की पहचान करना बताया गया था।

साथियों, आईएमडीटी एक्ट की सबसे बड़ी विशेषता और विवाद यही था कि इसमें किसी व्यक्ति को विदेशी साबित करने की जिम्मेदारी राज्य और शिकायतकर्ता पर डाली गई थी। भारत के बाकी हिस्सों में लागू फॉरेनर्स एक्ट,1946 के तहत यदि किसी व्यक्ति पर विदेशी होने का संदेह होता था तो उस व्यक्ति को स्वयं साबित करना पड़ता था कि वह भारतीय नागरिक है।लेकिन आईएमडीटी एक्ट में ऊल्टा प्रावधान था। आलोचकों ने कहा कि इससे अवैध घुसपैठियों की पहचान करना लगभग असंभव हो गया। शिकायत दर्ज कराने वाले व्यक्ति को विस्तृत प्रमाण देने पड़ते थे,जबकि प्रशासनिक प्रक्रिया इतनी जटिल थी कि हजारों मामलों में कार्रवाई आगे नहीं बढ़ पाती थी। यही कारण था कि कई राष्ट्रवादी और क्षेत्रीय संगठनों ने इसे घुसपैठियों को संरक्षण देने वाला कानून कहना शुरू कर दिया।असम में जनसंख्या परिवर्तन को लेकर जो चिंता व्यक्त की जाती रही, उसका संबंध केवल आबादी की संख्या से नहीं बल्कि राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सांस्कृतिक पहचान से भी था। कई जिलों में धार्मिक और भाषाई संरचना बदलने के दावे किए गए। स्थानीय संगठनों का आरोप था कि अवैध प्रवासियों के नाम मतदाता सूची में शामिल किए जा रहे हैं, जिससे चुनावी समीकरण प्रभावित हो रहे हैं। यही कारण था कि डेमोग्राफी और डेमोक्रेसी को एक-दूसरे से जोड़ा जाने लगा। आलोचकों का तर्क था कि यदि बड़ी संख्या में बाहरी लोग मतदाता बन जाते हैं तो स्थानीय समुदायों का राजनीतिक प्रभाव कमजोर हो सकता है। दूसरी ओर आईएमडीटी एक्ट के समर्थकों का कहना था कि असम में रहने वाले अनेक बंगाली भाषी मुसलमानों और गरीब नागरिकों को मनमाने ढंग से विदेशी घोषित किए जाने का खतरा था, इसलिए यह कानून मानवाधिकारों की रक्षा के लिए जरूरी था।यह विवाद अंततः भारतीय सुप्रीम कोर्ट तक पहुँचा। वर्ष 2005 में सुप्रीम कोर्ट ने आईएमडीटी एक्ट को रद्द कर दिया। अदालत ने कहा कि यह कानून अवैध घुसपैठ रोकने में प्रभावी साबित नहीं हुआ और इसने विदेशी पहचान की प्रक्रिया को अत्यधिक कठिन बना दिया। अदालत ने यह भी टिप्पणी की कि असम की जनसांख्यिकीय स्थिति और राष्ट्रीय सुरक्षा पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसके बाद असम में भी विदेशी नागरिकों की पहचान के लिए फॉरेनर्स एक्ट के नियम लागू किए गए। सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले को कई लोगों ने राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से ऐतिहासिक माना, जबकि कुछ मानवाधिकार संगठनों ने चिंता व्यक्त की कि इससे निर्दोष नागरिकों को परेशान किए जाने की संभावना सटीकता से बढ़ सकती है।

साथियों, अब वर्ष 2026 में केंद्र सरकार जिस मिशन डेमोग्राफी की बात कर रही है, उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि कहीं न कहीं इसी ऐतिहासिक बहस से जुड़ी हुई दिखाई देती है। गृह मंत्रालय द्वारा गठित नई उच्चस्तरीय समिति का उद्देश्य केवल अवैध घुसपैठ की पहचान करना नहीं बल्कि देश के विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे जनसांख्यिकीय परिवर्तनों का वैज्ञानिक और साक्ष्य-आधारित अध्ययन करना बताया गया है। समिति की अध्यक्षता जस्टिस प्रकाश प्रभाकर नावलेकर को सौंपी गई है, जो सुप्रीम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश और मध्य प्रदेश के पूर्व लोकायुक्त रह चुके हैं। समिति में पूर्व नौकरशाह, पुलिस अधिकारी, आर्थिक विशेषज्ञ और जनगणना आयुक्त जैसे सदस्य शामिल किए गए हैं ताकि इस संवेदनशील विषय का बहुआयामी अध्ययन किया जा सके।समिति को जिन प्रमुख कार्यों की जिम्मेदारी दी गई है, वे इस मुद्दे की गंभीरता को दर्शाते हैं। इसे अवैध आप्रवास सहित जनसांख्यिकीय परिवर्तनों के कारणों का अध्ययन करना है। सीमा पार गतिविधियाँ, आर्थिक अवसर, नियोजित प्रवासन, असामान्य बसावट पैटर्न और सामाजिक- पर्यावरणीय कारकों की भूमिका का विश्लेषण करना है। समिति धार्मिक और सामाजिक समुदायों के स्तर पर संरचनात्मक जनसंख्या परिवर्तनों का अध्ययन करेगी, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ आँकड़े राष्ट्रीय प्रवृत्तियों से अलग दिखाई देते हैं। साथ ही इसे अवैध आप्रवासियों की कानूनी, निष्पक्ष और समयबद्ध पहचान, हिरासत और निर्वासन के लिए स्थायी संस्थागत ढाँचे की सिफारिश करने का कार्य भी सौंपा गया है।

साथियों सरकार की 3डी नीति,डिटेक्ट, डिलीट और डिपोर्ट– इसी व्यापक रणनीति का हिस्सा मानी जा रही है। डिटेक्ट का अर्थ है अवैध प्रवासियों की पहचान करना, डिलीट का अर्थ मतदाता सूची या सरकारी रिकॉर्ड से फर्जी नाम हटाना और डिपोर्ट का मतलब अवैध रूप से रह रहे विदेशी नागरिकों को वापस भेजना। सरकार का दावा है कि यह अभियान केवल राजनीतिक मुद्दा नहीं बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न है। सीमावर्ती क्षेत्रों में घुसपैठ, नकली दस्तावेज, आतंक वित्तपोषण, मानव तस्करी और संगठित अपराध जैसी गतिविधियों को इससे जोड़ा जा रहा है। यही कारण है कि गृह मंत्री अमित शाह ने सभी सीमाओं पर 360 डिग्री प्लान लागू करने की बात कही है, जिसमें सीमा सुरक्षा बल, खुफिया एजेंसियाँ, केंद्रीय विभाग और राज्य सरकारें मिलकर काम करेंगी।हालाँकि इस पूरे मुद्दे का राजनीतिक आयाम भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। वेस्ट बंगाल में चुनावों के दौरान बीजेपी ने अवैध घुसपैठ को बड़ा चुनावी मुद्दा बनाया था। पार्टी का आरोप रहा है कि सीमावर्ती इलाकों में अवैध प्रवास के कारण जनसंख्या संतुलन और चुनावी राजनीति प्रभावित हो रही है। दूसरी ओर विपक्षी दलों का कहना है कि सरकार इस मुद्दे का राजनीतिक ध्रुवीकरण के लिए उपयोग करती है। आलोचकों का तर्क है कि जनसंख्या परिवर्तन केवल अवैध घुसपैठ का परिणाम नहीं होता; इसके पीछे रोजगार, शहरीकरण, आंतरिक पलायन, आर्थिक अवसर और सामाजिक गतिशीलता जैसे अनेक कारण भी होते हैं। इसलिए किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले विस्तृत तथ्यात्मक अध्ययन आवश्यक है।इसी कारण नई समिति का गठन महत्वपूर्ण माना जा रहा है, क्योंकि सरकार इसे साक्ष्य-आधारित नीति निर्माण का आधार बता रही है। समिति को एक वर्ष के भीतर रिपोर्ट सौंपनी है और आवश्यकता पड़ने पर छह महीने का विस्तार भी दिया जा सकता है। माना जा रहा है कि रिपोर्ट के आधार पर सीमा प्रबंधन, नागरिक पहचान प्रणाली, जनसंख्या निगरानी और अवैध प्रवासियों की पहचान को लेकर बड़े प्रशासनिक और कानूनी कदम उठाए जा सकते हैं।

साथियों, इस बहस का एक महत्वपूर्ण पहलू मानवाधिकार और संवैधानिक संतुलन भी है। भारत एक लोकतांत्रिक गणराज्य है जहाँ कानून का शासन सर्वोच्च माना जाता है। इसलिए किसी भी कार्रवाई में यह सुनिश्चित करना आवश्यक होगा कि वास्तविक भारतीय नागरिकों को परेशान न किया जाए और नागरिक अधिकारों का उल्लंघन न हो। यही कारण है कि विशेषज्ञ बार-बार कानूनी, निष्पक्ष और समयबद्ध प्रक्रिया की आवश्यकता पर जोर दे रहे हैं। यदि किसी व्यक्ति को विदेशी घोषित किया जाता है तो उसके लिए पर्याप्त कानूनी प्रक्रिया, अपील का अधिकार और दस्तावेजी सत्यापन आवश्यक होगा।

साथियों अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी अवैध प्रवासन और जनसांख्यिकीय परिवर्तन आज कई देशों के लिए बड़ा राजनीतिक मुद्दा बन चुके हैं। यूरोप, अमेरिका और एशिया के अनेक देशों में सीमा सुरक्षा, अवैध आप्रवास और राष्ट्रीय पहचान को लेकर तीखी बहसें चल रही हैं। भारत में भी यही विमर्श अब अधिक संस्थागत और नीति-आधारित रूप लेता दिखाई दे रहा है। फर्क केवल इतना है कि भारत की स्थिति अत्यंत जटिल है, क्योंकि यहाँ विविध भाषाएँ, धर्म, संस्कृतियाँ और सीमाई चुनौतियाँ एक साथ मौजूद हैं।

अतः अगर हम उपरोक्त पूरे विवरण का अध्ययन कर इसका विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि मिशन डेमोग्राफी केवल अवैध घुसपैठ के विरुद्ध अभियान नहीं बल्कि भारत के भविष्य की सामाजिक, राजनीतिक और सुरक्षा संरचना से जुड़ा प्रश्न बन चुका है। एक पक्ष इसे राष्ट्रीय सुरक्षा, सांस्कृतिक पहचान और लोकतांत्रिक संतुलन की रक्षा के लिए आवश्यक कदम मानता है, जबकि दूसरा पक्ष आशंका व्यक्त करता है कि इस मुद्दे का राजनीतिक और सांप्रदायिक उपयोग हो सकता है। आईएमडीटी एक्ट से लेकर आज की हाई-लेवल कमेटी तक की यात्रा यह दिखाती है कि भारत में जनसांख्यिकीय परिवर्तन का प्रश्न केवल आँकड़ों का विषय नहीं बल्कि संविधान, नागरिकता, मानवाधिकार, लोकतंत्र और राष्ट्रीय सुरक्षा के जटिल संतुलन से जुड़ा हुआ है। आने वाले समय में समिति की रिपोर्ट और उसके आधार पर उठाए जाने वाले कदम यह तय करेंगे कि भारत इस चुनौती का समाधान किस दिशा में खोजता है।

-संकलनकर्ता) एडवोकेट
किशन सनमुखदास भावनानीं
गोंदिया महाराष्ट्र
9284141425

फुटपाथों की वापसी का समय : शहरों को फिर से मनुष्यों के लिए बचाने की आवश्यकता

भारत के शहरों का विकास पिछले कुछ दशकों में जिस दिशा में हुआ है, उसने एक गंभीर और विडंबनापूर्ण स्थिति उत्पन्न कर दी है। शहरों में सड़कें चौड़ी होती गईं, फ्लाईओवर बढ़ते गए, वाहन बढ़ते गए, पार्किंग के लिए नए-नए स्थान खोजे जाते रहे, लेकिन इस पूरी विकास-यात्रा में सबसे अधिक उपेक्षित यदि कोई हुआ तो वह है पैदल चलने वाला सामान्य नागरिक। जिस फुटपाथ का निर्माण मूलतः मनुष्य को सुरक्षित चलने का अधिकार देने के लिए किया गया था, वही फुटपाथ आज अतिक्रमण, अव्यवस्था, व्यापारिक कब्जों, अवैध पार्किंग, निर्माण सामग्री, कूड़े और प्रशासनिक उदासीनता के बीच अपनी पहचान खो चुका है। भारतीय शहरों में आज स्थिति यह है कि सड़कें वाहनों की हो गई हैं और फुटपाथ या तो गायब हैं, या इतने बदहाल हैं कि उन पर चलना स्वयं एक जोखिम बन गया है। यह केवल नगर नियोजन की समस्या नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक अधिकारों, सामाजिक समानता, सार्वजनिक स्वास्थ्य और सभ्यता के चरित्र से जुड़ा हुआ प्रश्न है। अब समय आ गया है कि भारत 'रीक्लेम द फुटपाथ' अर्थात फुटपाथों को पुनः जनता के लिए वापस लेने के राष्ट्रीय अभियान की आवश्यकता को गंभीरता से समझे।

किसी भी सभ्य शहर की पहचान केवल उसकी ऊँची इमारतों, चमकदार सड़कों या विशाल मॉलों से नहीं होती, बल्कि इस बात से होती है कि वहाँ एक सामान्य नागरिक कितनी गरिमा और सुरक्षा के साथ पैदल चल सकता है। दुर्भाग्य से भारतीय शहरों में पैदल चलने वाले को लगभग द्वितीय श्रेणी का नागरिक मान लिया गया है। नगर नियोजन का पूरा ढाँचा वाहन-केंद्रित होता चला गया है। नई सड़क बनाते समय सबसे पहले यह सोचा जाता है कि कारें कितनी तेजी से दौड़ेंगी, ट्रैफिक कितना कम होगा, पार्किंग कहाँ बनेगी, लेकिन यह शायद ही सोचा जाता है कि एक बुजुर्ग व्यक्ति, एक बच्चा, एक दिव्यांग नागरिक, एक महिला या एक गरीब मजदूर सुरक्षित रूप से पैदल कैसे चलेगा। जबकि वास्तविकता यह है कि भारत के शहरों में आज भी बहुत बड़ी आबादी प्रतिदिन पैदल चलती है। लाखों लोग बस स्टैंड तक, रेलवे स्टेशन तक, बाजार तक, स्कूल तक और कार्यस्थल तक पैदल पहुँचते हैं। लेकिन उनकी सुविधा और सुरक्षा नगर प्रशासन की प्राथमिकताओं में दिखाई नहीं देती।

फुटपाथ केवल चलने का स्थान नहीं होता, वह शहर की सामाजिक आत्मा का हिस्सा होता है। फुटपाथ लोगों को जोड़ता है, सार्वजनिक जीवन को जीवंत बनाता है, छोटे व्यापारों को जन्म देता है, संवाद पैदा करता है और शहर को मानवीय बनाता है। जिस शहर में लोग पैदल चल सकते हैं, वहाँ सामाजिक जीवन अधिक सक्रिय होता है। इसके विपरीत जहाँ पूरा शहर केवल वाहनों के लिए डिजाइन किया जाता है, वहाँ मनुष्य धीरे-धीरे मशीनों के पीछे छूटने लगता है। भारत के अनेक शहरों में आज यही हो रहा है। सड़क पार करना एक युद्ध जैसा अनुभव बन चुका है। फुटपाथों पर चलना असंभव हो गया है। कहीं दुकानदारों ने कब्जा कर लिया है, कहीं रेहड़ी-पटरी ने रास्ता रोक लिया है, कहीं मोटरसाइकिलें खड़ी हैं, कहीं सीवर खुले पड़े हैं, कहीं बिजली के खंभे बीच रास्ते में खड़े हैं और कहीं फुटपाथ का निर्माण ही इस प्रकार किया गया है कि वह पैदल चलने योग्य नहीं रह जाता। परिणामस्वरूप लोग मजबूरी में सड़क पर चलते हैं और दुर्घटनाओं का शिकार होते हैं।

भारत में सड़क दुर्घटनाओं में बड़ी संख्या पैदल चलने वालों की होती है। यह केवल ट्रैफिक अनुशासन का प्रश्न नहीं, बल्कि उस सोच का परिणाम है जिसमें शहरों को कारों के लिए बनाया गया और मनुष्यों को उसके बीच संघर्ष करने के लिए छोड़ दिया गया। विडंबना यह है कि भारत जैसे देश में जहाँ बड़ी आबादी निजी कारों की मालिक नहीं है, वहाँ भी नगर नियोजन का मॉडल पश्चिमी कार-केंद्रित शहरीकरण की नकल पर आधारित होता चला गया। बड़े-बड़े फ्लाईओवर बनते रहे, लेकिन फुटपाथ टूटे रहे। यह विकास का असंतुलित और सामाजिक रूप से अन्यायपूर्ण मॉडल है। एक गरीब व्यक्ति जिसके पास कार नहीं है, जो पैदल चलता है या सार्वजनिक परिवहन का उपयोग करता है, वह भी समान रूप से शहर का नागरिक है। उसे सुरक्षित चलने का अधिकार उतना ही है जितना किसी कार मालिक को सड़क उपयोग का अधिकार है।

फुटपाथों की दुर्दशा का एक बड़ा कारण प्रशासनिक दृष्टिकोण भी है। नगर निकाय अक्सर फुटपाथ को स्थायी सार्वजनिक संपत्ति के रूप में नहीं, बल्कि ऐसी जगह के रूप में देखते हैं जिसे किसी भी समय तोड़ा, खोदा, घेरा या अतिक्रमित किया जा सकता है। कभी पाइपलाइन के लिए फुटपाथ तोड़ दिया जाता है, कभी केबल डालने के लिए, कभी निर्माण सामग्री रख दी जाती है, कभी राजनीतिक पोस्टर और विज्ञापन उस पर कब्जा कर लेते हैं। कई शहरों में तो फुटपाथ केवल कागजों पर मौजूद हैं। जो बने भी हैं, वे इतने संकरे, ऊँचे-नीचे या अव्यवस्थित हैं कि आम नागरिक सड़क पर चलना अधिक सुविधाजनक समझता है। यह स्थिति विशेष रूप से बुजुर्गों, दिव्यांगों और बच्चों के लिए अत्यंत खतरनाक है।

फुटपाथों को पुनः प्राप्त करने का अर्थ केवल अतिक्रमण हटाना नहीं है। इसका अर्थ शहरों की सोच को बदलना है। शहरों को यह स्वीकार करना होगा कि सड़क केवल वाहनों के लिए नहीं होती। सड़क सार्वजनिक जीवन का साझा स्थान है। आधुनिक शहरी नियोजन में अब पूरी दुनिया 'वॉकएबल सिटी' अर्थात पैदल चलने योग्य शहरों की अवधारणा की ओर लौट रही है। यूरोप, जापान और कई अन्य देशों में यह समझ विकसित हुई है कि यदि शहरों को रहने योग्य बनाना है तो पैदल चलने वालों, साइकिल चालकों और सार्वजनिक परिवहन को प्राथमिकता देनी होगी। चौड़ी सड़कें और अधिक वाहन अंततः ट्रैफिक समस्या का समाधान नहीं करते, बल्कि नई समस्याएँ पैदा करते हैं। इसके विपरीत यदि शहर इस प्रकार डिजाइन हों कि लोग पैदल चल सकें, साइकिल चला सकें और सार्वजनिक परिवहन का उपयोग सहजता से कर सकें, तो शहर अधिक स्वस्थ, शांत, सुरक्षित और पर्यावरण-अनुकूल बनते हैं।

भारत में 'रीक्लेम द फुटपाथ' अभियान को केवल शहरी सुविधा के रूप में नहीं, बल्कि सार्वजनिक स्वास्थ्य के अभियान के रूप में भी देखा जाना चाहिए। पैदल चलना मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है। आज मोटापा, मधुमेह, हृदय रोग और मानसिक तनाव तेजी से बढ़ रहे हैं। यदि शहर ऐसे हों जहाँ लोग सुरक्षित और आराम से पैदल चल सकें, तो समाज का स्वास्थ्य बेहतर हो सकता है। लेकिन वर्तमान स्थिति में लोग पैदल चलने से बचते हैं क्योंकि फुटपाथ असुरक्षित हैं, धूप से रहित हैं, टूटी हुई अवस्था में हैं या पूरी तरह अतिक्रमित हैं। इस प्रकार खराब फुटपाथ केवल शहरी असुविधा नहीं, बल्कि सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट भी बन जाते हैं।

पर्यावरणीय दृष्टि से भी फुटपाथ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यदि शहर पैदल चलने और साइकिल के अनुकूल बनें तो निजी वाहनों का उपयोग घट सकता है। इससे पेट्रोल-डीजल की खपत कम होगी, प्रदूषण घटेगा, कार्बन उत्सर्जन कम होगा और शहरों का तापमान भी नियंत्रित रहेगा। आज भारतीय शहर हीट आइलैंड बनते जा रहे हैं जहाँ कंक्रीट, डामर और वाहनों की गर्मी मिलकर तापमान बढ़ाती है। यदि फुटपाथों के साथ वृक्षारोपण, हरित पट्टियाँ और छायादार मार्ग विकसित किए जाएँ तो शहर अधिक ठंडे और रहने योग्य बन सकते हैं। इस प्रकार फुटपाथ केवल परिवहन का विषय नहीं, बल्कि जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण संरक्षण से भी जुड़ा हुआ प्रश्न है।

यह भी समझना आवश्यक है कि फुटपाथों पर होने वाला अतिक्रमण केवल प्रशासनिक विफलता का परिणाम नहीं, बल्कि व्यापक आर्थिक और सामाजिक संरचना से भी जुड़ा है। लाखों छोटे रेहड़ी-पटरी व्यवसायी जीविका के लिए फुटपाथों पर निर्भर हैं। इसलिए समाधान केवल बलपूर्वक हटाने में नहीं हो सकता। आवश्यकता संतुलित और मानवीय नीति की है जिसमें पैदल यात्रियों का अधिकार भी सुरक्षित रहे और छोटे व्यवसायियों के लिए व्यवस्थित स्थान भी उपलब्ध कराए जाएँ। शहरों को इस समस्या का वैज्ञानिक समाधान विकसित करना होगा। फुटपाथ पूरी तरह कब्जा-मुक्त भी रहें और आजीविका भी सुरक्षित रहे – यह संतुलन संभव है यदि नियोजन ईमानदारी और संवेदनशीलता से किया जाए।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि फुटपाथ का प्रश्न लोकतंत्र का प्रश्न भी है। शहर यदि केवल कार मालिकों के लिए बनते हैं तो वे सामाजिक असमानता को बढ़ाते हैं। फुटपाथ गरीब और अमीर दोनों के लिए समान रूप से आवश्यक है। एक बच्चा, एक बुजुर्ग, एक मजदूर, एक छात्र, एक महिला – सभी को सुरक्षित चलने का समान अधिकार है। जिस समाज में पैदल चलने वाला असुरक्षित हो जाए, वहाँ विकास का मॉडल मूलतः असंतुलित माना जाना चाहिए। इसलिए फुटपाथों की वापसी वास्तव में शहरों को मनुष्यों के लिए वापस लेने का आंदोलन है।

अब आवश्यकता केवल चर्चा की नहीं, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर ठोस शहरी सुधार की है। हर शहर में फुटपाथों का मानकीकरण होना चाहिए। चौड़े, समतल, छायादार, दिव्यांग-अनुकूल और अतिक्रमण-मुक्त फुटपाथ विकसित किए जाने चाहिए। नगर निकायों की जवाबदेही तय होनी चाहिए। पैदल चलने वालों की सुरक्षा को ट्रैफिक नीति का केंद्रीय भाग बनाया जाना चाहिए। स्कूलों, बाजारों और सार्वजनिक संस्थानों के आसपास विशेष पैदल क्षेत्र विकसित किए जाने चाहिए। शहरों में वृक्षों के साथ हरित फुटपाथ बनाए जाने चाहिए। यह केवल सुविधा नहीं, बल्कि भविष्य की आवश्यकता है।

भारत जिस प्रकार तीव्र शहरीकरण के दौर से गुजर रहा है, उसमें यह निर्णय अत्यंत महत्वपूर्ण होगा कि उसके शहर मनुष्यों के लिए बनेंगे या केवल वाहनों के लिए। यदि वर्तमान प्रवृत्ति जारी रही तो शहर अधिक गर्म, अधिक प्रदूषित, अधिक तनावपूर्ण और अधिक असमान होते जाएँगे। लेकिन यदि फुटपाथों को पुनः प्राप्त करने का व्यापक अभियान चलाया गया, तो भारतीय शहर अधिक मानवीय, स्वस्थ, सुरक्षित और जीवंत बन सकते हैं। वास्तव में फुटपाथ केवल सीमेंट का बना रास्ता नहीं है; वह नागरिक गरिमा, सामाजिक समानता और सभ्य शहरी जीवन का आधार है। इसलिए अब समय आ गया है कि भारत पूरे गंभीरता से कहे – शहरों को फिर से मनुष्यों के लिए बचाना है, और इसकी शुरुआत फुटपाथों की वापसी से होगी।

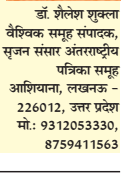

डॉ. शैलेश शुक्ला
वैश्विक समूह संपादक,
सृजन संसार अंतरराष्ट्रीय पत्रिका समूह
आशियाना, लखनऊ – 226012, उत्तर प्रदेश
मो.: 9312053330, 8759411563